**ओ३म्**

**‘सृष्टि में मनुष्य जन्म क्यों होता आ रहा है?’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

हम संसार में जन्में हैं। हमें मनुष्य कहा जाता है। मनुष्य शब्द का अर्थ मनन व चिन्तन करने वाला प्राणी है। **संसार में अनेक प्राणी हैं परन्तु मनन करने वाला प्राणी केवल मनुष्य ही है।** मनुष्य का जन्म-माता व पिता से होता है। यह दोनों मनुष्य के जन्म में मुख्य कारण वा हेतु दिखाई देते हैं और यह है भी सत्य। बिना माता व पिता के किसी भी मनुष्य का जन्म नहीं हो सकता। जिस प्रकार से सन्तान अपने माता व पिता से जन्म लेता है उसी प्रकार से ही उसके माता पिता का जन्म भी अपने-अपने माता-पिताओं से हुआ है। हमारे पास इतिहास के पुराने से पुराने ग्रन्थ हैं। वेद ईश्वरीय ज्ञान है जिसमें मनुष्य जीवन व्यतीत करने की सम्पूर्ण जीवन प्रणाली व जीवन शैली दी गई है। इसके अतिरिक्त वेद के बाद ब्राह्मण ग्रन्थों का निर्माण तत्कालीन विद्वान ऋषियों ने किया। इन ब्राह्मण ग्रन्थों को एक प्रकार से वेदों की व्याख्या एवं इतिहास के ग्रन्थ कह सकते हैं। वेद एवं इन ब्राह्मण ग्रन्थों से विदित होता है कि सृष्टि के आरम्भ से मनुष्यों का जन्म अपने-अपने माता-पिताओं से होता आ रहा है। जब सृष्टि के आरम्भ में पहुंचते हैं तो हमें आदि मनुष्यों के माता-पिता का होना बुद्धि, ज्ञान व अनुमान से असम्भव सिद्ध होता है। उस काल के यदि कोई ग्रन्थ हैं तो वह केवल वेद एवं ब्राह्मण ग्रन्थ ही हैं। इनसे यही विदित होता है कि सृष्टि की रचना परमात्मा से हुई है। परमात्मा ने ही सृष्टि के आरम्भ में मनुष्यों सहित समस्त प्राणी जगत की अमैथुनी सृष्टि की। अमैथुनी सृष्टि बिना माता-पिता की सृष्टि को कहते हैं। क्या अमैथुनी सृष्टि सम्भव है तो इसका उत्तर है कि अमैथुनी सृष्टि सम्भव है जिसका प्रमाण सृष्टि के आरम्भ में माता-पिता के न होने के कारण मनुष्यों अर्थात् स्त्रियों व पुरूषों का उत्पन्न होना है। यदि यह अमैथुनी सृष्टि न होती तो संसार चलता ही न। और यदि परमात्मा इस अमैथुनी सृष्टि व सृष्टि की रचना न करता तो यह संसार बन भी नहीं सकता था।

**मनमोहन कुमार आर्य**

 सृष्टि की उत्पत्ति व इसके संचालन के विषय में वेदों में क्या ज्ञान है?, उसे जानकर इस सृष्टि में घटाते हैं। यदि वह सृष्टि के सर्वथा अनुरूप है तो सत्य है अन्यथा नहीं है। **वेदानुसार ईश्वर सृष्टि का आदि निमित्त कारण है। ईश्वर सत्य, चित्त, आनन्दस्वरूप, सर्वज्ञ, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र, सर्वातिसूक्ष्म और सृष्टिकर्त्ता आदि स्वरूप व गुणों वाला वेदानुसार है।** ईश्वर से इतर इस दृश्यमान जगत का आदि कारण प्रकृति है जो स्वभाव से जड़ एवं सूक्ष्म तथा ईश्वर के आधीन है, अनादि, नित्य अर्थात् सदा-सर्वदा से विद्यमान है। ईश्वर ने इस जड़ कारण प्रकृति को अपनी सर्वज्ञता व स्वभाविक ज्ञान, जैसा वह पूर्व कल्पों में सृष्टि की रचना, पालन व प्रलय करता आया है, अन्तर्यामी, सर्वज्ञता व सर्वशक्तिमान स्वरूप से इस ब्रह्माण्ड को रचा है। सृष्टि न तो अपने आप बन सकती है और न ईश्वर के अतिरिक्त अन्य कोई कारण ब्रह्माण्ड में उपस्थित है। **ईश्वर के अस्तित्व का प्रमाण ही सृष्टि की रचना व प्राणी जगत का अस्तित्व तथा उसका व्यवस्थित रूप से उत्पत्ति व संचालन है।** यह विवेकी मनुष्य हर पल और हर क्षण अनुभव करते हैं। ईश्वर व प्रकृति के अतिरिक्त इस संसार में जीव नाम की तीसरी व अन्तिम अनादि व नित्य सत्ता है। जीव चेतन स्वरूप है तथा आनन्द से रहित तथा आनन्द व सुख का अभिलाषी है। यह सुख इसे मनुष्य आदि भिन्न-भिन्न प्राणी योनियों में जन्म लेकर ही प्राप्त होता है अथवा मनुष्य जीवन में शुभ कर्मों को करके मुक्ति वा मोक्ष प्राप्त होने पर ईश्वर के द्वारा प्रदान किया जाता है। जीव का स्वरूप सूक्ष्म पदार्थ या सत्ता, एकदेशी, आकार रहित, नेत्रों से अदृश्य, अल्पज्ञ, ज्ञान व कर्म के स्वभाववाला, कर्म-फल-चक्र में बन्धा हुआ, शुभाशुभ कर्मों का कत्र्ता व इनके फलों का भोक्ता, ईश्वरोपासना, यज्ञ, दान, सेवा, परोपकार, वेदविद्या की प्राप्ति, सत्कर्मों व वेदानुसार जीवन व्यतीत कर मुक्ति को प्राप्त होता है। ईश्वर संख्या में एक है। प्रकृति भी एक है परन्तु कारण अवस्था में यह सूक्ष्म होकर पूरे ब्रह्माण्ड में फैली हुई वा विस्तृत रहती है। ईश्वर प्रकृति की इस परमाणु वा इससे पूर्व की स्थिति को एकत्रित व नियमों के अनुसार परमाणुरूप कर स्थूल व घनीभूत बनाते हुए कार्य सृष्टि का रूप प्रदान करते हैं जैसे कि भवन निर्माण करने से पूर्व सभी सामग्री को एकत्र कर उसे व्यवस्थित रूप दिया जाता है। ऐसा ही परमात्मा ने सत्व, रज व तम गुणों वाली सर्वत्र फैली व विस्तृत प्रकृति को अपने अन्तर्यामी व सर्वशक्तिमान स्वरूप से एकत्रित कर वर्तमान स्वरूप सूर्य, पृथिवी, चन्द्र, अन्य ग्रह व उपग्रह, अन्य सौर मण्डल, नक्षत्र व निहारिकाओं आदि की उत्पत्ति करके किया है। सृष्टि की उत्पत्ति का ज्ञान ईश्वर में नित्य अर्थात् अनादि काल से है। वह न तो कम होता है और न वृद्धि को प्राप्त होता है। वह सदा एक समान व एक रस ही रहता है। इसका जीता-जागता प्रमाण ही वर्तमान की सृष्टि वा हमारा ब्रह्माण्ड है।

 अब हम वर्तमान सृष्टि पर दृष्टि डालते हैं तो हम पाते हैं कि यह सृष्टि बहुत पुरानी है। इसके काल की कल्पना करते हैं तो कह सकते हैं कि यह हजारों, लाखों व करोड़ों वर्ष पुरानी है या इसका इतना पुराना होना सम्भव है। वैदिक संस्कृति व सभ्यता के अनुसार वेद सम्वत् एक अरब छियानवें करोड़ आठ लाख त्रेपन हजार एक सौ पन्द्रह वर्ष पूर्ण होकर चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से एक सौ सोलहवां वर्ष आरम्भ हुआ है। यह गणना हमारे पूर्वज सृष्टि के आरम्भ से करते आये हैं। प्रत्येक धार्मिक अनुष्ठान के आरम्भ में अनुष्ठान का संकल्प करते हुए इसे बोला जाता है। देशी व विदेशी वैज्ञानिकों के अनुमान भी लगभग इतनी ही अवधि सृष्टि की उत्पत्ति की मानते हैं जिनसे दोनों का प्रायः समन्वय हो जाता है। मनुष्यों के प्राचीन इतिहास के दो प्रमुख ग्रन्थ महाभारत और बाल्मिकी रामायण भी हमारे पास सुलभ हैं। इनके अनुसार महाभारत काल लगभग पांच हजार वर्ष व बाल्मिकी रामायाण का काल कई लाख व करोड़ वर्ष पूर्व सिद्ध होता है। इस लम्बे काल से मनुष्य व अन्य प्राणी जन्म लेते आ रहे हैं। इन सभी प्राणियों में भिन्नता होते हुए भी एक व्यवस्था दिखाई देती है जो कर्म फलों के अनुसार है। शुभ कर्म करने वाले मनुष्यों की यश व कीर्ति फैलती है व विपरीत की निन्दा होती है। शुभ कर्म करने वाले दीर्घ जीवी होते हैं व निन्दित कर्म करने वाले अल्पायु होते हैं। अच्छे कर्मों को करके मनुष्य सम्मानित व सुखी होते हैं व उन्हें प्रभूत धन व सम्पत्ति प्राप्त होती है। वह ज्ञानार्जन करते हैं जिनमें वेद ज्ञान भी सम्मिलित है तथा निन्दित कर्म करने वाले प्रायः सुखों से वंचित ही रहते हैं। यह सब व्यवस्था प्रकृति में कर्म फल सिद्धान्त को पुष्ट करती है। इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि मनुष्यों में विद्यमान जीवात्मा ही मनुष्य शरीरों में कर्मों की कर्त्ता है और यह जन्म-जन्मान्तर को प्राप्त होकर मनुष्य व इतर प्राणी योनियों में जन्म लेकर कर्म फलों को भोगता है। इससे ईश्वर, प्रकृति, जीवात्मा के अस्तित्व व कर्मफल सिद्धान्त का सा्फल्य सिद्ध होता है। यही वैदिक सिद्धान्त है। अन्य मतों के सिद्धान्त भी वैदिक मतों के प्रचलित सिद्धान्तों को अन्य-अन्य मतों में समाविष्ट कर बनाये गये हैं। जो लोग वैदिक सिद्धान्तों को नहीं मानते उन्हें अल्पज्ञ, अशुद्ध व अपरिपक्व, रज व तमों गुण वाली बुद्धि, मन व मस्तिष्क से युक्त मनुष्य ही कह सकते हैं। इस संक्षिप्त विवेचन से ज्ञात होता है कि मनुष्य जन्म, आयु और सुख-दुःखी रूपी भोग हमें ईश्वर के द्वारा हमारे पूर्व जन्मों के कर्मों के अनुसार मिले हैं। महर्षि पतंजलि वेदों व कर्मफल सिद्धान्त के मर्मज्ञ ऋषि थे। उन्होंने कहा है कि मनुष्य के कर्मों से प्रारब्ध बनता है जिससे मनुष्य के नये जन्म की जाति, आयु व भोग निश्चित होते हैं। यहां जाति का अर्थ मनुष्य, पशु, पक्षी आदि प्रकार भेद से असंख्य योनियां हैं। आयु जीवनकाल है तथा भोग सुख व दुख व इनके साधन हैं। महर्षि पतंजलि का यह सिद्धान्त भी सृष्टि में कार्यरूप में विद्यमान देखा जा सकता है। इन सभी विषयों को अधिक गहराई से जानने के लिए महर्षि दयानन्द सरस्वती कृत सत्यार्थ प्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका सहित आर्य विद्वानों के वेदों पर आधारित भिन्न-भिन्न विषयों के ग्रन्थों को देखना चाहिये व उनकी संगति कर उनसे शंका समाधान कर निभ्र्रान्त होना चाहिये। इसी के साथ इस चर्चा को विराम देते हैं।

 **-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**